[2021] 10 एस. सी. आर 1187

अक्कम्मा और अन्य। ....अपीलकर्ता

बनाम

वेमावती और अन्य। ...प्रतिवादी

(सिविल अपील सं. 5884/2009)

25 नवंबर, 2021

[एल. नागेश्वर राव और अनिरुद्ध बोस, जे. जे.]

सिविल अपीलीय न्यायनिर्णयः सिविल अपील No.5884 /2009 से।

उच्च न्यायालय कर्नाटक के आर. एफ. ए. No.331/2005 के 21.07.2008 दिनांकित निर्णय और आदेश से।

जी. वी. चंद्रशेखर, सुश्री अपेक्षा डी., एन. के. वर्मा, सुश्री अंजना चंद्रशेखर, अधिवक्ता।

अपीलार्थियों के लिए।

करुणाकर महालिक, बी. विश्वनाथ भंडारकर, सर्वेंद्र कुमार, वी. एन. रघुपति, अधिवक्ता।

उत्तरदाताओं के लिए।

न्यायालय का निर्णय इनके द्वारा दिया गया

अनिरुद्ध बोस, जे.

1.हमारे सामने अपीलकर्ता अपने पूर्ववर्ती अरकेरी अब्बैया द्वारा वर्ष 1987 में स्थापित एक मुकदमे में वादी हैं, जो विभूतिपुरा गांव, कृष्णराजपुरा होबली, बैंगलोर दक्षिण तालुक में स्थित

10.54 गुंटा की कुछ अचल संपत्ति के स्वामित्व की घोषणा के लिए दावा कर रहे हैं। उस मुकदमे में निषेधाज्ञा के रूप में भी राहत का दावा किया गया था, जिसमें प्रतिवादियों को निर्देश दिया गया था कि वे उसके शांतिपूर्ण कब्जे और मुकदमे की संपत्ति के आनंद में हस्तक्षेप न करें। उनकी मृत्यु पर, अरकेरी अब्बैया के कानूनी प्रतिनिधियों को रिकॉर्ड पर लाया गया। इस फैसले में, हम अरकेरी अब्बैया को मूल वादी के रूप में संदर्भित करेंगे। वह पहले प्रतिवादी का दामाद था- मुनियप्पा. दोनों प्रतिवादियों की बाद में मृत्यु हो गई और उनके कानूनी प्रतिनिधि रिकॉर्ड में हैं। मुकदमा शुरू होने के समय मूल दूसरा प्रतिवादी पहले प्रतिवादी का बेटा था। इस मुकदमे से पहले, मूल वादी द्वारा वर्ष 1982 में मोटे तौर पर उसी अचल संपत्ति से जुड़ा एक और मुकदमा दायर किया गया था। हम इस फैसले में बाद में उक्त मुकदमे के बारे में चर्चा करेंगे और दोनों मुकदमों को अब उनकी स्थापना के वर्षों के अनुसार संदर्भित किया जाएगा। यानी क्रमशः 1982 का सूट और 1987 का सूट। ट्रायल कोर्ट के समक्ष मूल वादी का मामला यह था कि उसने 29 मई, 1972 को पंजीकृत बिक्री विलेख के तहत अपने पूर्व मालिक पपैया से वाद की भूमि खरीदी थी। भूमि का कुल क्षेत्रफल जिसे मूल वादी ने खरीदने का दावा किया था 1 एकड़ 15 गुंटा था और विवादित संपत्ति भूमि के उस खंड का हिस्सा है। वादपत्र में, मूल वादी का मामला यह था कि खरीद की तारीख से ही वाद भूमि पर उसका विशेष कब्जा और उपभोग था।

2. सब्जेक्ट सूट, यानी 1987 का मुकदमा, अन्य बातों के अलावा, इस आरोप पर स्थापित किया गया था कि प्रतिवादी मूल वादी के शांतिपूर्ण कब्जे और संपत्ति के आनंद में हस्तक्षेप करने का प्रयास कर रहे थे। यह विशेष रूप से आरोप लगाया गया था कि 15 फरवरी, 1987 को प्रतिवादियों ने वाद भूमि के शांतिपूर्ण कब्जे और आनंद में हस्तक्षेप किया। वादपत्र में यह भी आरोप लगाया गया है कि मुकदमे की अनुसूचित संपत्ति में अतिक्रमण का प्रयास 25 फरवरी, 1987 को प्रतिवादियों द्वारा दोहराया गया था। 1987 के मुकदमे में, जैसा कि हमने पहले ही

संकेत दिया है, दावा की गई राहत में इस आशय की घोषणा शामिल थी कि मूल वादी वाद भूमि का पूर्ण स्वामी था और स्थायी निषेधाज्ञा के लिए प्रार्थना भी की गई थी।

3. मूल वादी ने बेंगलुरु शहर में XVIII अतिरिक्त सिटी सिविल जज की अदालत में पिछला मुकदमा दायर किया था। 1982 का मुकदमा शाश्वत निषेधाज्ञा के लिए था, और निषेधाज्ञा राहत का दावा 1987 के मुकदमे के समान था, हालांकि हस्तक्षेप के समान आरोप पर नहीं। पहले का मुकदमा ओएस नंबर 3029/82 के रूप में दर्ज किया गया था। ट्रायल कोर्ट ने उक्त मुकदमे को इस आधार पर खारिज कर दिया था कि वादी अपना वैध कब्जा साबित नहीं कर सका। 1982 के मुकदमे में ट्रायल कोर्ट के फैसले के खिलाफ वर्तमान अपीलकर्ताओं के पूर्ववर्ती द्वारा अपील की गई थी, लेकिन उस अपील को भी 25 नवंबर, 1986 को कर्नाटक उच्च न्यायालय ने खारिज कर दिया था। इसके बाद यह मुकदमा था, जिसमें से वर्तमान अपील उत्पन्न होता है, उपरोक्त दो तिथियों पर बेदखल करने की धमकी दिखाते हुए स्थापित किया गया था। प्रतिवादियों द्वारा लिखित बयान दाखिल करके इस मुकदमे का विरोध किया गया था और उन्होंने अपने लिए स्वामित्व निर्धारित किया था। प्रतिवादियों ने मुकदमे की जमीन को बेनामी लेनदेन में खरीदने की दलील दी और पहले प्रतिवादी ने मुकदमे की जमीन का असली मालिक होने का दावा किया। उक्त मुकदमा 7 नवंबर, 1997 को खारिज कर दिया गया था। हालांकि, पेपरबुक में मौजूद तारीखों की सूची में यह कहा गया है कि ट्रायल कोर्ट ने प्रतिवादियों की बेनामी लेनदेन की याचिका को स्वीकार नहीं किया।

4. इस फैसले के खिलाफ वादी ने उच्च न्यायालय में अपील की थी। अपील में, मूल वादी के कानूनी प्रतिनिधियों को रिकॉर्ड पर लाया गया। उच्च न्यायालय ने अपील की अनुमति दे दी और मामले को ट्रायल कोर्ट में भेज दिया गया। 19 अगस्त, 2004 को दिए गए उच्च न्यायालय के

फैसले में, जिसके द्वारा मामले को वापस भेज दिया गया था, अन्य बातों के अलावा, यह कहा गया और निर्देशित किया गया:-

"4. इस मुकदमे में, वादी ने Exs पर अंकित R o R अर्क प्रस्तुत किया है। मुकदमे की तारीख के आसपास अपना कब्ज़ा साबित करने के लिए पी4 से पी.6 तक वादी ने अपनी ओर से साक्ष्य प्रस्तुत किये हैं। हालांकि प्रतिवादियों ने लिखित बयान दाखिल किया है, लेकिन वे वादी के गवाहों से जिरह करने में विफल रहे हैं और अपने साक्ष्य पेश करने में विफल रहे हैं। पहले के निषेधाज्ञा के मुकदमे को खारिज करने से वादी को स्वामित्व की घोषणा की व्यापक राहत पाने के लिए मुकदमा दायर करने में कोई दिक्कत नहीं होगी। लेकिन स्थायी निषेधाज्ञा का पिछला मुकदमा इस आधार पर खारिज कर दिया गया कि वादी अपना कब्जा साबित करने में विफल रहा। पूर्व में वादी द्वारा निर्मित आरओआर अर्क पी.4 से पी. 6 दर्शाता है कि वादी का कब्ज़ा है। ट्रायल कोर्ट उक्त साक्ष्य के संदर्भ के बिना, यंत्रवत रूप से इस निष्कर्ष पर पहुंचा है कि पिछले मुकदमे और संबंधित नियमित प्रथम अपील के खारिज होने के मद्देनजर वर्तमान मुकदमा दाखिल करना स्वीकार्य नहीं है। मामले को देखते हुए, यह उचित और आवश्यक है कि ट्रायल कोर्ट के फैसले को रद्द किया जाए।

5. तदनुसार, ट्रायल कोर्ट के आक्षेपित फैसले को रद्द कर दिया जाता है और मामले को कानून के अनुसार नए सिरे से निपटान के लिए ट्रायल कोर्ट में भेज दिया जाता है। यदि प्रतिवादी भाग लेते हैं और जिरह के उद्देश्य से पीडब्लू 1 और पीडब्लू 2 को बुलाने का अनुरोध करते हैं, तो अनुरोध स्वीकार किया जाना चाहिए और इसलिए प्रतिवादियों को भी अपने साक्ष्य प्रस्तुत करने की अनुमति दी जानी चाहिए। ट्रायल कोर्ट द्वारा पार्टियों को

कोई नया नोटिस जारी करने की आवश्यकता नहीं है। पक्षों को 06/09/2004 को ट्रायल कोर्ट के समक्ष उपस्थित होने का निर्देश दिया जाता है। एलसीआर तुरंत प्रेषित किया जाएगा। मुकदमे का निपटारा दिसंबर 2004 के अंत तक किया जाना है। अपीलकर्ता वादी के कानूनी प्रतिनिधि एक ज्ञापन दायर करके और तदनुसार कारण शीर्षक में संशोधन करवाकर खुद को मुकदमे में शामिल करने के हकदार हैं। ऐसा कहा जाता है कि पीडब्लू 1 मर चुका है। यदि वादी चाहे तो अतिरिक्त साक्ष्य प्रस्तुत करने का भी हकदार है।" (पेपरबुक में पुनरुत्पादित फैसले की प्रति से शब्दशः उद्धृत)

5. रिमांड पर, बैंगलोर सिटी में आठवीं अतिरिक्त सिटी सिविल जज की अदालत ने 18 दिसंबर, 2004 को दिए गए फैसले में पाया कि वादी (बहुवचन रूप का उपयोग किया जा रहा है क्योंकि मुकदमा उस समय से कानूनी रूप से चलाया जा रहा था, मृत वादी के प्रतिनिधियों) ने वाद संपत्ति पर स्वामित्व साबित कर दिया था। लेकिन कब्जे और उसमें रुकावट के पहलू पर, अदालत का निष्कर्ष वादी के खिलाफ गया। प्रतिवादियों का यह रुख कि वादी का कभी भी संपत्ति पर कब्जा नहीं था और मुकदमे के लिए कार्रवाई का कोई कारण नहीं था, को बरकरार रखा गया। ट्रायल कोर्ट मुख्य रूप से इस आधार पर वादी के खिलाफ गया कि वादी यह स्थापित नहीं कर सका कि उसका कब्जा था। ट्रायल कोर्ट ने वादी गवाह संख्या 1 के साक्ष्य का हवाला दिया, यानी मूल वादी जिसने स्वीकार किया था कि उसके ससुर का मुकदमे की जमीन पर कब्जा था और वह उस पर खेती कर रहा था। 1987 के मुकदमे में, मूल वादी यह प्रदर्शित नहीं कर सका कि 1982 के मुकदमे को खारिज करने के बाद मुकदमे की जमीन पर उसका कब्ज़ा कैसे हो गया। इस मुकदमे को, अन्य बातों के अलावा, निम्नलिखित तर्क पर खारिज कर दिया गया था:-

"(i) हालांकि वादी ने स्वीकार किया था कि पहले प्रतिवादी का मुकदमा भूमि पर कब्जा और खेती थी, लेकिन उसने कब्जे के लिए राहत नहीं मांगी।

(ii) कब्जे के लिए राहत के बिना केवल घोषणा का मुकदमा कायम रखने योग्य नहीं था। वादी को संपत्ति का मालिक घोषित करने से कोई उद्देश्य पूरा नहीं होगा।

6. उस निर्णय में यह भी कहा गया कि मुकदमा कालबाधित था। परिसीमा के बिंदु पर, इसे ट्रायल कोर्ट द्वारा रिमांड पर रखा गया था:-

"15. .....इसके अलावा स्वामित्व के विवाद की पुष्टि प्रतिवादी संख्या 1 द्वारा 28/01/1983 को लिखित बयान दाखिल करके की जाती है, लेकिन वादी ने 4 साल 2 महीने के अंतराल के बाद 02/03/1987 को वर्तमान मुकदमा दायर किया। वादी को ओएस 3029/82 में वर्तमान प्रतिवादी द्वारा लिखित बयान दाखिल करने की तारीख से 3 साल के भीतर यह मुकदमा दायर करना था। लेकिन 4 साल दो महीने बाद दाखिल किया गया. इसलिए, स्वामित्व की घोषणा के लिए वादी द्वारा दायर मुकदमा समय से बाधित है। तदनुसार, मैं अंक संख्या 5 का उत्तर सकारात्मक देता हूं।" (पेपरबुक में पुनरुत्पादित फैसले की प्रति से शब्दशः उद्धृत)

7. बर्खास्तगी के इस फैसले के खिलाफ, वादी ने कर्नाटक उच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटाया। अपील को 2005 की नियमित प्रथम अपील संख्या 331 के रूप में पंजीकृत किया गया था और अंततः 21 जुलाई, 2008 को खारिज कर दिया गया था।

8. हम अपील के तहत फैसले से पाते हैं कि उच्च न्यायालय के समक्ष सुनवाई के दौरान, वादी ने प्रतिवादियों से मुकदमे की संपत्ति के कब्जे की वैकल्पिक राहत की मांग करते हुए वाद में संशोधन करने की मांग की। उस बिंदु पर, उच्च न्यायालय ने टिप्पणी की और कहा:-

> "6. …….. पार्टियों के बीच विवाद वर्ष 1982 से लंबित है। ट्रायल कोर्ट ने ओएस नंबर 3029/82 में दिनांक 7.9.1985 के फैसले के तहत माना कि वादी तारीख के अनुसार अनुसूचित संपत्ति के कब्जे और आनंद में नहीं थे। वर्ष 1982 में मुकदमा दायर किया गया। 26 साल बीत जाने के बाद, वादी अब अनुसूचित संपत्ति के कब्जे की वसूली के लिए वैकल्पिक राहत के लिए वाद में संशोधन की मांग करते हुए आवेदन दायर कर रहे हैं। मैंने दायर हलफनामे का अध्ययन किया और मैं संशोधन के लिए आवेदन दाखिल करने में देरी के लिए वादी पक्ष के स्पष्टीकरण से संतुष्ट नहीं हूं। यह ऐसा मामला नहीं है जहां वादी को इस तथ्य की जानकारी नहीं थी, कि ट्रायल कोर्ट ने ओएस नंबर 3029/82 में दिनांक 7.9.1985 के अपने फैसले में माना था कि वादी के पास अनुसूचित संपत्ति का कब्जा नहीं था। इस अवधि में, यदि वादी के आवेदन की अनुमति दी जाती है, तो इससे नए सिरे से मुकदमा चलाया जाएगा। इसलिए, वादपत्र में संशोधन के लिए वादी का आवेदन खारिज किया जाता है।" (पेपरबुक में पुनरुत्पादित निर्णय की प्रति से शब्दशः उद्धृत)

9. उच्च न्यायालय की राय उसी उच्च न्यायालय के पहले के फैसले, श्री अरलप्पा बनाम श्री जगन्नाथ और अन्य (आईएलआर 2007 कार 339) के मामले में निहित तर्क पर आधारित थी। इस निर्णय में, यह कहा गया:-

"31. भले ही वादी यह कहते हुए अदालत में आता है कि उसका कब्जा है और यदि मुकदमे के बाद यह पाया जाता है कि मुकदमे की तारीख पर उसका कब्जा नहीं था, तब भी, घोषणा और स्थायी निषेधाज्ञा का मुकदमा खारिज कर दिया जा सकता है। कायम रखने योग्य नहीं है, क्योंकि यदि मुकदमे की तारीख पर वादी के पास कब्जा नहीं है तो स्थायी निषेधाज्ञा की कोई डिक्री नहीं दी जा सकती है। ऐसी परिस्थितियों में, वादी के लिए निर्णय से पहले वादपत्र में संशोधन करना और कब्जे से राहत लेना आवश्यक है। इसलिए, वादी द्वारा स्वामित्व और स्थायी निषेधाज्ञा की घोषणा के लिए एक मुकदमा, जो मुकदमे की तारीख पर कब्जे में नहीं है, जब वह कब्जे की वसूली के लिए आगे की राहत मांगने में भी सक्षम है, तो ऐसा करने से चूक जाता है, अदालत ऐसा नहीं करेगी ऐसी कोई भी घोषणा करें और मुकदमा चलने योग्य नहीं होने के कारण खारिज किया जा सकता है।"

10. हमारे समक्ष अपीलकर्ताओं की ओर से यह आग्रह किया गया है कि विशिष्ट राहत अधिनियम, 1963 की धारा 34 के प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए, मुकदमे को खारिज नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि घोषणा के दावे के साथ-साथ निषेधाज्ञा राहत के लिए भी कहा था। 1963 अधिनियम की धारा 34 में लिखा है:-

"स्थिति या अधिकार की घोषणा के संबंध में अदालत का विवेक। - किसी भी कानूनी चरित्र, या किसी संपत्ति के किसी भी अधिकार का हकदार कोई भी व्यक्ति, ऐसे चरित्र या अधिकार पर अपना हक देने से इनकार करने वाले, या इनकार करने में रुचि रखने वाले किसी भी व्यक्ति के खिलाफ मुकदमा दायर कर सकता है, और अदालत अपने विवेक से

उसमें ऐसा कर सकती है। घोषणा कि वह ऐसा हकदार है, और वादी को ऐसे मुकदमे में कोई और राहत मांगने की आवश्यकता नहीं है:

बशर्ते कि कोई भी अदालत ऐसी कोई घोषणा नहीं करेगी जहां वादी, केवल स्वामित्व की घोषणा के अलावा और राहत मांगने में सक्षम हो, ऐसा करने से चूक जाता है।

स्पष्टीकरण - संपत्ति का ट्रस्टी एक "व्यक्ति है जो किसी ऐसे व्यक्ति के स्वामित्व के प्रतिकूल शीर्षक को अस्वीकार करने में रुचि रखता है" जो अस्तित्व में नहीं है, और यदि अस्तित्व में है, तो वह एक ट्रस्टी होगा।

कानून के उपरोक्त प्रावधान को निर्णयों की एक श्रृंखला में समान रूप से समझा गया है। एमके रप्पाई और अन्य बनाम जॉन और अन्य [(1969 (2) एससीसी 590] के मामले में विशिष्ट राहत अधिनियम, 1877 की धारा 42 में एक समान प्रावधान से निपटते हुए, जिसे समान रूप से वाक्यांशित किया गया था, यह माना गया था:-

"12.....अधिकार की एक मात्र घोषणा विशिष्ट राहत अधिनियम, 1877 की धारा 42 और विशिष्ट राहत अधिनियम, 1963 की धारा 34 शरारत के भीतर होगी।

" कानून के समान प्रस्ताव का पालन किया गया है राम सरन और अन्य बनाम श्रीमती गंगा देवी [(1973) 2 एससीसी 60], विनय कृष्णा बनाम केशव चंद्रा और अन्य [(1993) सप्लीमेंट 3 एससीसी 129] और अनाथुला सुधाकर बनाम पी. बुची रेड्डी (मृत) एलआरएस द्वारा और अन्य[(2008) 4 एससीसी 594] में ।

11. उच्च न्यायालय ने तथ्यात्मक आधार पर अपील के तहत फैसले में कहा:-

"8. मैं अरलप्पा के मामले में विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण से पूरी तरह सहमत हूं। मौजूदा मामले में ओएस नंबर 3029/82 में ट्रायल कोर्ट के निष्कर्ष में कहा गया कि वादी के पास शेड्यूल संपत्ति का आनंद और कब्ज़ा नहीं था, अंतिम हो गया था। वादी का मामला यह नहीं है कि ओएस नंबर 3029/82 में फैसले के बाद उसने अनुसूचित संपत्ति का कब्जा वापस पा लिया। ऐसी स्थिति में, जब वादी ने ओएस नंबर 1014/87 दायर किया तो कब्जे की वसूली के लिए राहत मांगने में कोई बाधा नहीं थी। वादीगण कब्जे की और राहत मांगने से चूक गए हैं, इसलिए वे घोषणा और निषेधाज्ञा के हकदार नहीं हैं। आक्षेपित निर्णय में ट्रायल कोर्ट का तर्क कानून के अनुसार है और यह रिकॉर्ड पर साक्ष्य द्वारा समर्थित है। मुझे ट्रायल कोर्ट द्वारा पारित फैसले में हस्तक्षेप करने का कोई उचित आधार नहीं मिला।" (पेपरबुक में पुनरुत्पादित फैसले की प्रति से शब्दशः उद्धृत)

12. यहां स्थिति यह है कि मूल वादी ने 1987 के मुकदमे में स्वामित्व और कब्जे की घोषणा के लिए मुकदमा दायर किया था। प्रथम न्यायालय ने पाया कि मूल वादी का कब्जा नहीं है। यह सच है कि मूल वादी द्वारा दावा की गई राहतें घोषणा और निषेधाज्ञा दोनों के लिए थीं, लेकिन बाद वाला मुकदमे की भूमि पर कब्ज़ा स्थापित करने में विफल रहा, प्रतिवादियों को मुकदमे की भूमि में हस्तक्षेप करने से रोकने के लिए निषेधाज्ञा का उसका मामला विफल हो गया। वादी चाहते हैं कि हम इस आधार पर आगे बढ़ें कि चूंकि ट्रायल कोर्ट ने मुकदमे की संपत्ति का स्वामित्व साबित कर दिया है, इसलिए कब्ज़ा मान लिया जाना चाहिए। उच्च न्यायालय के दो निर्णयों में, देविश बनाम एमके सुब्बैया और अन्य। (एआईआर 1970 माइस 249) और नवलराम लक्ष्मीदास देवमुरारी बनाम विजयाबेन जयवंतभाई चावड़ा (एआईआर 1998 गुजरात 17) में कानून की इस धारणा पर प्रकाश डाला गया है कि कब्ज़ा स्वामित्व के बाद होता है।

13. हमारा ध्यान एम. कृष्णास्वामी के "लॉ ऑफ एडवर्स पोज़िशन" (12वें संस्करण) के कुछ अंशों की ओर भी आकर्षित हुआ है। इस टिप्पणी में, लेखक ने रिक्त भूमि के संबंध में कानून की धारणा के संबंध में कानूनी स्थिति को निम्नलिखित तरीके से संक्षेप में प्रस्तुत किया है:-

> "कब्जा आवश्यक रूप से वास्तविक उपयोगकर्ता के समान नहीं है। कब्ज़ा साबित करने के लिए आम तौर पर ज़मीन का उपयोगकर्ता साबित करना ज़रूरी नहीं है। यदि भूमि ऐसी प्रकृति की है कि वह सामान्य तरीकों से वास्तविक उपभोग के लिए अनुपयुक्त है, तो यह माना जा सकता है कि मालिक का कब्ज़ा तब तक जारी रहेगा जब तक कि विपरीत साबित न हो जाए।
>
> कब्जे की न्यायशास्त्रीय अवधारणा दो सामग्रियों से बनी है: (i) कॉर्पस: और (ii) एनिमस। कॉर्पस का अर्थ भौतिक कब्जे को दर्शाने वाली संपत्ति पर वास्तविक विशेष भौतिक नियंत्रण है। दुश्मनी दूसरों को छोड़कर मालिक के रूप में संपत्ति पर कब्ज़ा करने के इरादे और अधिकार के प्रयोग को दर्शाता है। ये दो सामग्रियां एक साथ मिलकर कानूनी कब्ज़ा बनाती हैं। इस प्रकार, भूमि के एक खुले भूखंड पर 12 वर्ष से भी अधिक समय तक गुढ़ा (कचरा) फेंकने मात्र से गुढ़ा फेंकने वाले व्यक्तियों का कानूनी कब्ज़ा नहीं हो जाएगा और ऐसे उपयोगकर्ता पर प्रतिकूल कब्ज़ा तो हो ही सकता है, जिससे उसे ख़त्म किया जा सके। असली मालिक का शीर्षक।"

14. लेकिन कानून के ये कथन इस मामले में लागू नहीं होंगे, क्योंकि पहले के मुकदमे में मूल वादी ने पहले प्रतिवादी द्वारा विषय भूमि पर कब्जे के साथ-साथ उपयोग को भी स्वीकार किया था। उपयोगकर्ता का अधिकार देने का कोई मामला भी नहीं बनाया गया है। किसी भी वादी ने प्रथम प्रतिवादी द्वारा विषयभूमि के आकस्मिक उपयोग का आरोप नहीं लगाया है। कब्जे के

लिए मूल वादी के दावे को 1982 के मुकदमे में खारिज कर दिया गया था और बाद के मुकदमे में भी, जो इस अपील को जन्म देता है, वादी भूमि का पुनर्ग्रहण प्रदर्शित नहीं कर सका जिसके आधार पर वह कब्जे की गड़बड़ी से निषेधाज्ञा राहत प्राप्त कर सके। देविश (सुप्रा) और नवलराम लक्ष्मीदास देवमुरारी (सुप्रा) के मामलों में पहले बताए गए दोनों दो निर्णयों में, पहले दो न्यायालय - तथ्य के न्यायालय होने के नाते, मुकदमे की संपत्ति पर वादी के कब्जे के बारे में सकारात्मक निष्कर्ष पर आए थे। जहां तक हमारे समक्ष कार्यवाही का संबंध है, प्रथम न्यायालय का निष्कर्ष अन्यथा है। वादी ने अपीलीय चरण में वादपत्र में संशोधन के माध्यम से उस संबंध में कोई मामला नहीं बनाने के दोष को ठीक करने के लिए कब्जे की वसूली के लिए प्रार्थना शुरू करने की मांग की। हाई कोर्ट ने इस प्रार्थना को खारिज कर दिया. हमने इस फैसले में पहले ही इस तरह की अस्वीकृति का कारण उद्धृत किया है। हम इस बिंदु पर उच्च न्यायालय से सहमत हैं। जबकि इस प्रकृति की स्थिति में, वादपत्र में संशोधन की मांग की जा सकती है (विनय कृष्ण बनाम केशव चंद्र और अन्य), ऐसी याचिका निर्धारित सीमा अवधि के भीतर की जानी चाहिए थी। वेंकटराज और अन्य के मामले में कानून की यह स्थिति स्पष्ट की गई है । बनाम विद्याने डौरेराडजापेरुमल (मृत) कानूनी प्रतिनिधियों और अन्य के माध्यम से । [(2014) 14 एससीसी 502]। इस मामले में, यह माना गया है:-

> "24. एक मात्र घोषणात्मक डिक्री आम तौर पर ज्यादातर मामलों में निष्पादन योग्य नहीं रहती है। हालाँकि, किसी पक्ष को बिना मांगे राहत को शामिल करने के लिए वाद में संशोधन की मांग करने से कोई रोक नहीं है, बशर्ते कि इसे परिसीमन से बचाया जाए। हालाँकि, प्रतिवादियों के लिए इस मुद्दे को जल्द से जल्द उठाना अनिवार्य है। (प्रकाश चंद खुराना बनाम हरनाम सिंह और एमपी राज्य बनाम मांगीलाल शर्मा देखें)।"

15. हम उच्च न्यायालय के निर्णय के उस भाग से सहमत हैं जिसमें यह माना गया है कि वाद संपत्ति पर वादी द्वारा कब्ज़ा स्थापित नहीं किया गया था और इसलिए निषेधाज्ञा राहत नहीं दी जा सकती। जैसा कि हम पहले ही दर्ज कर चुके हैं, हम भी संशोधन की याचिका खारिज करने के उच्च न्यायालय के तर्क से सहमत हैं लेकिन हम अपील को खारिज करने के लिए उच्च न्यायालय के उक्त फैसले में बताए गए पूरे तर्क से पूरी तरह सहमत नहीं हैं। हमारी राय में, 1963 अधिनियम की धारा 34 के प्रावधान में निहित रोक को वादी के मामले में लागू नहीं किया जा सकता है क्योंकि सूटलैंड में हस्तक्षेप से निषेधाज्ञा के लिए परिणामी राहत का दावा किया गया था। धारा 34 के प्रावधान में निहित निषेध केवल तभी प्रभावी होगा जब एकमात्र राहत बिना किसी परिणामी राहत के घोषणा के लिए हो। 1987 के मुकदमे की याचिका में निषेधाज्ञा से राहत मांगी गई थी। इस तरह की दोहरी राहत मुकदमे को रखरखाव के आधार पर खारिज होने से बचाएगी। यह एक तथ्य है कि इस मामले की तथ्यात्मक पृष्ठभूमि को देखते हुए, वादी को कब्ज़ा वापस पाने के लिए कहना चाहिए था, लेकिन जैसा कि मूल रूप से दायर किया गया था, यह प्रतिबिंबित करता है कि मूल वादी के पास मुकदमे की भूमि का कब्ज़ा था। ट्रायल कोर्ट और प्रथम अपीलीय न्यायालय के समक्ष ऐसी याचिका उचित रूप से विफल रही।

16. 1963 अधिनियम की धारा 34 के प्रावधान में निहित निषेध या रोक एक मुकदमे की रखरखाव को निर्धारित करती है और उस मुद्दे का परीक्षण उस आधार पर किया जाना चाहिए जिस आधार पर वाद दायर किया गया है। यदि वादपत्र में घोषणात्मक राहत के साथ-साथ निषेधाज्ञा के रूप में परिणामी राहत के दावे शामिल हैं, जो उपरोक्त धारा के परंतुक में अनिवार्य बार के एकमात्र आधार पर रखरखाव पर हमले से मुकदमे को बचाएगा। यदि साक्ष्य के आधार पर वादी परिणामी राहत देने में विफल रहता है, तो जहां तक परिणामी राहत की याचिका का संबंध है, मुकदमा योग्यता के आधार पर खारिज किया जा सकता है, लेकिन 1963 अधिनियम

की धारा 34 के प्रावधानों को लागू करने वाले रखरखाव के सवाल पर नहीं। यदि वादी अन्यथा घोषणात्मक राहत प्राप्त करने में सफल हो जाता है, तो ऐसी राहत दी जा सकती है। इस आधार पर, हम श्री अरलप्पा (सुप्रा) के मामले में कर्नाटक उच्च न्यायालय के फैसले के अनुपात को अच्छा कानून नहीं मानते हैं। उस निर्णय में यह कहा गया है:-

> "31. भले ही वादी यह कहते हुए अदालत में आता है कि उसका कब्जा है और यदि मुकदमे के बाद यह पाया जाता है कि मुकदमे की तारीख पर उसका कब्जा नहीं था, तब भी, घोषणा और स्थायी निषेधाज्ञा का मुकदमा खारिज कर दिया जा सकता है। कायम रखने योग्य नहीं है, क्योंकि यदि मुकदमे की तारीख पर वादी के पास कब्जा नहीं है तो स्थायी निषेधाज्ञा की कोई डिक्री नहीं दी जा सकती है। ऐसी परिस्थितियों में, वादी के लिए निर्णय से पहले वादपत्र में संशोधन करना और कब्जे से राहत लेना आवश्यक है। इसलिए, वादी द्वारा स्वामित्व और स्थायी निषेधाज्ञा की घोषणा के लिए एक मुकदमा, जो मुकदमे की तारीख पर कब्जे में नहीं है, जब वह कब्जे की वसूली के लिए आगे की राहत मांगने में भी सक्षम है, तो ऐसा करने से चूक जाता है, अदालत ऐसा नहीं करेगी ऐसी कोई भी घोषणा करें और मुकदमा चलने योग्य नहीं होने के कारण खारिज किया जा सकता है।"

17. जहां तक उस मुकदमे में राहत का दावा किया गया है, जिससे यह अपील उत्पन्न हुई है, घोषणा के लिए प्रार्थना वादी की भूमि के कब्जे में हस्तक्षेप के दो उदाहरणों पर आधारित थी और संपत्ति के साथ हस्तक्षेप से रोकने के लिए निषेधाज्ञा राहत का भी दावा किया गया था। लेकिन मूल वादी द्वारा उक्त संपत्ति पर कब्ज़ा स्थापित नहीं किया गया था। मुकदमे के बाद के चरण में पेश की जाने वाली वैकल्पिक राहत को भी सीमा के कारण विचार करने में असमर्थ

पाया गया। इस प्रकार, इन दो तथ्यात्मक आधारों पर आधारित वादी के मामले की नींव तथ्यान्वेषी न्यायालयों द्वारा इन दोनों दावों या आरोपों को खारिज करने के साथ ढह गई। लेकिन वह कारक वादी को स्वामित्व की घोषणा से इनकार करने का आधार नहीं होना चाहिए। विशिष्ट राहत अधिनियम , 1963 में स्टैंडअलोन घोषणात्मक डिक्री देने में कोई रोक नहीं है । ट्रायल कोर्ट एक सकारात्मक निष्कर्ष पर पहुंचा कि मूल वादी सूटप्रॉपर्टी का मालिक था। लेकिन यह माना गया कि वादी द्वारा कब्जे की राहत की घोषणा के अभाव में, स्वामित्व की घोषणा नहीं की जा सकती। हम पहले ही इस तर्क के प्रति अपनी असहमति व्यक्त कर चुके हैं। यह 1963 अधिनियम की धारा 34 के प्रावधानों का गलत निर्माण प्रतीत होता है । ट्रायल कोर्ट और हाई कोर्ट इस आधार पर आगे बढ़े हैं कि उस परंतुक में प्रयुक्त अभिव्यक्ति "आगे राहत" में वे सभी राहतें शामिल होनी चाहिए जिनका दावा किया जाना चाहिए था या दिया जा सकता था। लेकिन हमारे विचार में, यह उक्त परंतुक की आवश्यकता नहीं है। यह हमें इस परिणामी प्रश्न पर ले जाता है कि क्या 1987 के मुकदमे को सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश II नियम 2 में निहित सिद्धांत के तहत वर्जित माना जा सकता था। हमारी राय में, संहिता के उक्त प्रावधान नहीं होंगे इस मामले के तथ्यों पर लागू करें, क्योंकि 1987 के मुकदमे में कानूनी अधिकार से इनकार 15 और 25 फरवरी, 1987 की दो कथित घटनाओं पर आधारित है। ये आरोप घोषणा के दावों को जन्म दे सकते हैं जो स्पष्ट रूप से नहीं किए जा सकते हैं 1982 का सूट. घोषणात्मक डिक्री के दावे को योग्यता के आधार पर खारिज किया जा सकता है, लेकिन ऐसे मामले में मुकदमे को 1908 की संहिता के आदेश II नियम 2 में शामिल सिद्धांतों को लागू करके खारिज नहीं किया जा सकता है।

18. उच्च न्यायालय इस आधार पर आगे बढ़ा है कि विषयगत मुकदमे में, मूल वादी ने कब्जे की वसूली के लिए राहत मांगी होगी और ऐसा न करने पर, वे घोषणा और कब्जे की डिक्री

के हकदार नहीं हो गए। लेकिन जैसा कि हम पहले ही देख चुके हैं, 1963 अधिनियम की धारा 63 के प्रावधान में घोषणा के साथ-साथ परिणामी राहत के लिए प्रार्थना करने की आवश्यकता है। इस मामले में, यदि दूसरी गिनती पर राहत योग्यता के आधार पर विफल हो जाती है, तो केवल उस कारण से 1963 अधिनियम की धारा 34 में शामिल उपरोक्त निषेध के मद्देनजर मुकदमा विफल नहीं होना चाहिए।

19. 1963 अधिनियम की धारा 34 में शामिल कानून की स्थिति पर राय रखने के बाद, हम फिर से वर्तमान मामले के तथ्यों की ओर मुड़ेंगे। पहला मुकदमा शाश्वत निषेधाज्ञा के लिए था, जिसमें मूल वादी कब्ज़ा स्थापित करने में विफल रहने के कारण हार गया। दूसरे मुकदमे (1987 का मुकदमा) में, बाद की गड़बड़ी के आरोप के आधार पर घोषणा के लिए राहत का दावा किया गया था और उस आधार पर निषेधाज्ञा राहत मांगी गई थी। हालाँकि कब्जे में होने का वादी का दावा विफल रहा। इस प्रकार, प्रतिवादियों को वाद भूमि पर मूल वादी के कब्जे में गड़बड़ी या हस्तक्षेप करने से रोकने के लिए कोई निषेधाज्ञा नहीं दी जा सकती है। लेकिन चूंकि ट्रायल कोर्ट ने पाया कि मूल वादी का स्वामित्व साबित हो गया है, हमारे विचार में मूल वादी यह घोषणा करने का हकदार है कि वह मुकदमे की संपत्ति का पूर्ण मालिक है। घोषणा के लिए ऐसी डिक्री देने में कोई रोक नहीं है और ऐसी घोषणा को इस तर्क पर अस्वीकार नहीं किया जा सकता है कि ऐसी घोषणा देने से कोई उद्देश्य पूरा नहीं होगा। हो सकता है कि ऐसी घोषणात्मक डिक्री इस मामले के तथ्यों में निष्पादन योग्य न हो, लेकिन केवल इसी कारण से वादी को ऐसी घोषणा से इनकार नहीं किया जा सकता है। विषय संपत्ति पर मूल वादी के स्वामित्व के संबंध में ट्रायल कोर्ट द्वारा सकारात्मक निष्कर्ष दिया गया है। प्रथम अपील न्यायालय होने के नाते, उच्च न्यायालय द्वारा उस निष्कर्ष को अस्वीकार नहीं किया गया है। ऐसी परिस्थितियों में, हमारी राय में, स्वामित्व पर घोषणात्मक डिक्री देने में विवेक का प्रयोग न्यायालय द्वारा एकमात्र आधार पर

ऐसी राहत से इनकार करने के लिए नहीं किया जा सकता है कि मूल वादी आगे या परिणामी राहत पर अपना मामला स्थापित करने में विफल रहा है।

20. इन परिस्थितियों में, हम उच्च न्यायालय के फैसले को बरकरार रखते हैं कि वादी प्रार्थना के अनुसार निषेधाज्ञा राहत के हकदार नहीं थे और साथ ही कब्जे के लिए राहत शुरू करने के लिए वादी की याचिका को भी खारिज कर दिया। लेकिन साथ ही, हम उस भाग को अलग करते हैं जिसके द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया है कि वादी संपत्ति के स्वामित्व के राशन के हकदार नहीं थे। हम तदनुसार मानते हैं कि वादी यह घोषणा करने के हकदार हैं कि वे मुकदमे की संपत्ति के मालिक हैं और इस आशय की एक डिक्री होगी।

21. उपरोक्त शर्तों में अपील को एक पक्ष की अनुमति है।

22. लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं होगा।

अपील की आंशिक रूप से अनुमति है।

सोनम विश्नोई